SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

पीत पत्रकारिताः मिशन या दीमक

प्रियंका बसवाल, (Ph.D.), राजनीति विज्ञान विभाग,
अपैक्स महाविद्यालय, दौसा, राजस्थान, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author

प्रियंका बसवाल, (Ph.D.), राजनीति विज्ञान विभाग,
अपैक्स महाविद्यालय, दौसा, राजस्थान, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 02/02/2022
Revised on : -----
Accepted on : 09/02/2022
Plagiarism : 00% on 02/02/2022

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 0%

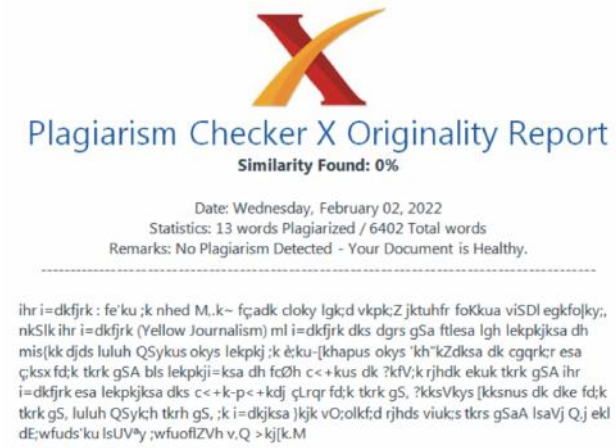

Date: Wednesday, February 02, 2022
Statistics: 13 words Plagiarized / 6402 Total words
Remarks: No Plagiarism Detected - Your Document is Healthy.

ihr i=dkfjrk : fe'ku ;k nhed M,.k~ fç;adk cloky lgk;d vkpk;Z jktuhfr foKkua viSDl egkfo|ky;, nkSlk ihr i=dkfjrk (Yellow Journalism) ml i=dkfjrk dks dgrs gSa ftlesa lgh lekpkjksa dh mis{kk djds luluh QSykus okys lekpkj ;k è;ku-[khapus okys 'kh"kZdksa dk cgqrk;r esa ç;ksx fd;k tkrk gSA bls lekpkji=ksa dh fcØh c<+kus dk ?kfV;k rjhdk ekuk tkrk gSA ihr i=dkfjrk esa lekpkjksa dks c<+k-p<+kdj çLrqr fd;k tkrk gS, ?kksVkys [kksnus dk dke fd;k tkrk gS, luluh QSyk;h tkrh gS, ;k i=dkjksa }kjk vO;olkf;d rjhds viuk;s tkrs gSaA lsaVj Q.j ekl dE;wfuds'ku lsUV®y ;wfuoflZVh v,Q >kj[k.M

शोध सार

तथ्यों के तोड़–मरोड़ और सनसनीखेज बनाने की प्रवृति ने कई विकृतियों को जन्म दिया है, जो पीत पत्रकारिता के दायरे में आता है। समाचारों के प्रस्तुतीकरण से जुड़े प्रयोग पहले भी होते रहे हैं, लेकिन उनमें पत्रकारिता के बुनियादी सिद्धांतों के साथ कभी समझौता नहीं किया गया। यह विकृति विकसित देशों की पत्रकारिता से होते हुए विकासशील देशों तक पहुंची है और आज एक गंभीर समस्या का रूप धारण कर चुकी है। इसकी प्रमुख वजह विकसित देशों को मॉडल मानकर उनके पत्रकारिता के प्रयोगों को बिना सोचे–समझे अपनाना है, पीत पत्रकारिता इसकी ही देन है। सूचना और मनोरंजन के संयोजन में तथ्यों के तोड़–मरोड़ की प्रक्रिया ने पत्रकारिता के मूल सिद्धांतों को ही चुनौती दे दी है। बाजारवादी ताकतों ने पत्रकारिता को मिशन की जगह व्यापार का स्वरूप प्रदान कर दिया। इसे ध्यान में रखते हुए कई बड़े राजनीतिक और व्यवसायिक घरानों का पत्रकारिता के क्षेत्र में आगमन हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य जनसेवा न होकर समाज और सत्ता पर नियंत्रण बनाए रखना है। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध में भी पत्रकारिता का जमकर दुरुपयोग हुआ। जनसमूह को अपने पक्ष में करने के लिए संदेशों के साथ खिलवाड़ आम बात रही। इसके लिए पत्रकारिता के सभी साधनों पर नियंत्रण कर कई देशों को युद्ध करने पर मजबूर किया गया, जबकि कई देशों पर युद्ध थोपा गया। यह दौर आगे भी चलता रहा।

जनसंचार के नए माध्यमों रेडियो, टीवी और न्यू मीडिया के आगमन के बाद प्रतिस्पर्धा का एक नया दौर शुरू हुआ, जिसने पीत पत्रकारिता को बढ़ावा दिया। पहले सिर्फ पत्र पत्रिकाओं के बीच प्रसार संख्या और विज्ञापन को लेकर होड़ थी, लेकिन रेडियो के बाद टीवी और फिर टीवी के बाद न्यू मीडिया के आने से यह

प्रतिस्पर्धा काफी बढ गई। सनसनी और क्राइम रिपोर्टर जैसे कार्यक्रमों ने सनसनाहट पैदा कर दिया। यह चैनलों की मजबूरी भी रही कि उन्हें 24 घंटे कुछ न कुछ प्रसारित करते रहना है। प्रसारण भी ऐसा हो, जो टीआरपी, विज्ञापन और दर्शक बनाए रखे, इसलिए उन्होंने पश्चिमी देशों के कई कार्यक्रमों की नकल करने में भी कोई गुरेज नहीं की। कुछ चैनल्स तो आम आदमी का ब्रेन वाश करने का पूरा प्रयास कर रहे हैं, कभी–कभी सोशल मीडिया पर झूठ इतना चल जाता है कि सच भी कमजोर पड़ जाता है ।

मुख्य शब्द

पीत पत्रकारिता, वैश्वीकरण, एडुटेनमेंट, टी.आर.पी., जनसंचार, न्यू मीडिया.

पीत पत्रकारिता (Yellow Journalism) उस पत्रकारिता को कहते हैं जिसमें सही समाचारों की उपेक्षा करके सनसनी फैलाने वाले समाचार या ध्यान–खींचने वाले शीर्षकों का बहुतायत में प्रयोग किया जाता है। इसे समाचार पत्रों की बिक्री बढ़ाने का घटिया तरीका माना जाता है। पीत पत्रकारिता में समाचारों को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है, घोटाले खोदने का काम किया जाता है, सनसनी फैलायी जाती है, या पत्रकारों द्वारा अव्यवसायिक तरीके अपनाये जाते हैं। सेंटर फॉर मास कम्यूनिकेशन सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ झारखण्ड के सहायक आचार्य राजेश कुमार के अनुसार पत्रकारिता के बदलते परिदृश्य में संदेशों को विभिन्न तरीके से जनसमूह के समक्ष पेश करने की होड़ मची है। लगातार यह प्रयास हो रहा है कि संदेश कुछ अलग तरीके से कैसे प्रकाशित प्रसारित हो। इस होड़ ने प्रयोग को बढ़ावा दिया है, जिससे समाचारों के प्रस्तुतीकरण का तरीका थोड़ा रोचक जरूर लगता है, लेकिन यह बनावटी है। इसके पीछे होने वाले तथ्यों के तोड़ मरोड़ और सनसनीखेज बनाने की प्रवृति ने कई विकृतियों को जन्म दिया है, जो पीत पत्रकारिता के दायरे में आता है।

समाचारों के प्रस्तुतीकरण से जुड़े प्रयोग पहले भी होते रहे हैं, लेकिन उनमें पत्रकारिता के बुनियादी सिद्धांतों के साथ कभी समझौता नहीं किया गया। यह विकृति विकसित देशों की पत्रकारिता से होते हुए विकासशील देशों तक पहुंची है और आज एक गंभीर समस्या का रूप धारण कर चुकी है। इसकी प्रमुख वजह विकसित देशों को मॉडल मानकर उनके पत्रकारिता के प्रयोगों को बिना सोचे समझे अपनाना है, पीत पत्रकारिता इसकी ही देन है।

वैश्वीकरण के बाद जिस तरीके से समाचारों के प्रस्तुतीकरण का तरीका बदला है और बदलता जा रहा है। इसने कई सवाल खड़े किए हैं। ऐसा नहीं है कि ये सवाल सिर्फ आज से जुड़े हैं। पहले भी थे और भविष्य में भी होंगे, लेकिन इसकी गंभीरता को अब महसूस किया जाने लगा है। कई स्तर पर इस मुद्दे को लेकर बहस जारी है। हर समाचार संगठन यह दावे के साथ कहता है कि वह स्वस्थ पत्रकारिता का पोषक है और समाचार प्रस्तुतीकरण के क्षेत्र में होने वाले सारे प्रयोग पत्रकारिता के सिद्धांतों और आचार संहिता को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। लेकिन सच्चाई यह है कि पत्रकारिता ने एक नया चोला पहन लिया है, जो सिर्फ व्यवसाय की भाषा समझता है। इसके लिए नए–नए तरीके ढूढे गए हैं। हर तरीका जाने अनजाने में पीत पत्रकारिता को बढ़ावा देता है।

सूचना क्रांति के इस दौर में इंफोटेनमेंट और एडुटेनमेंट किसी भी समाचार संगठन की संपादकीय नीति का अहम हिस्सा बन गया है। तकनीकी रूप से इंफोटेनमेंट कहने का अर्थ सूचना को मनोरंजन के साथ और एडुटेनमेंट का अर्थ शिक्षा को मनोरंजन के साथ प्रस्तुत करना है। इसने समाचारों में घालमेल की स्थिति उत्पन्न कर दी है। सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का ऐसा घोल तैयार किया गया है, जिसमें समाचार और विचार के बीच फर्क करने में परेशानी हो रही है। सूचना और मनोरंजन के संयोजन में तथ्यों के तोड़–मरोड़ की प्रक्रिया ने पत्रकारिता के मूल सिद्धांतों को ही चुनौती दे दी है। इन प्रवृतियों के बीज पीत पत्रकारिता में निहित हैं।

बाजारवादी ताकतों ने पत्रकारिता को मिशन की जगह व्यापार का स्वरूप प्रदान कर दिया। इसे ध्यान में रखते हुए कई बड़े राजनीतिक और व्यावसायिक घरानों का पत्रकारिता के क्षेत्र में आगमन हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य जनसेवा न होकर समाज और सत्ता पर नियंत्रण बनाए रखना है। उन्हें यह भली–भांति मालूम है कि पत्रकारिता एक ऐसा जरिया है जिससे जनसमूह में पैठ बनाई जा सकती है। उन्होंने जनसमूह को आकर्षित करने के लिए उनकी

रुचियों को बदलने का प्रयास किया, जो पीत पत्रकारिता के तरीकों से ही संभव हुआ। आजकल यू–टयूब अधिकतर समाचार चैनल सनसनी फैलाने के लिए ही फोटो और शीर्षक का प्रयोग करतें है यहाँ तक कि गूगल न्यूज़ पर भी शीर्षक मनभावन या सनसनी फ़ैलाने वाले ही आ रहे हैं ।

बदलते पत्रकारीय परिदृश्य में प्रबंधन ने तथ्यों को तोड़ने मरोड़ने, समाचार को सनसनीखेज बनाने, चटपटी कहानियां प्रस्तुत करने और भड़काऊ चित्रों को प्रकाशित प्रसारित करने को संपादकीय नीति का हिस्सा बना दिया। संपादकों पर ऐसा करने का दबाव डाला गया। धीरे–धीरे पीत पत्रकारिता समाज में अपनी जड़ें मजबूत करता गया। इस परिस्थिति ने छोटे और मझोले पत्रकारिता संगठनों के लिए बड़ी मुसीबत खड़ी कर दी और प्रबंधन के बनाए मापदंडों के अनसरण को बाध्य किया। कई सैद्धांतिक रूप से मजबूत समाचार संगठन भी डगमगाने लगे, लेकिन कुछ ने अब भी संतुलन बनाए रखा है और पीत पत्रकारिता को संपादकीय नीति का हिस्सा नहीं माना है। पत्रकारिता की साख बनाए रखना हमेशा से चुनौतीपूर्ण रहा है, क्योंकि इसमें निम्न सिद्धांतों का पालन करना अत्यंत जरूरी होता हैः 1. यथार्थता, 2. वस्तुपरकता, 3. निष्पक्षता, 4. संतुलन, 5. स्रोत।

एक पत्रकार के लिए समाचार प्रस्तुतीकरण के दौरान संतुलन का ध्यान रखना अत्यंत जरूरी होता है। यदि वह किसी एक पक्ष को ध्यान में रखकर काम कर रहा है तो वह पूर्वाग्रह से ग्रसित है। इसका तात्पर्य है कि किसी एक पक्ष को फायदा पहुंचाने और दूसरे पक्ष की छवि बिगाडने के लिए वह तथ्यों के साथ खेल रहा है और समाचार को तोड़ मरोड़ कर पेश कर रहा है, जो पीत पत्रकारिता है। स्रोत एक अहम जरिया है जो इस बात की पुष्टि करता है कि कोई घटना सही मायने में (कब, कहाँ, क्या, कौन, कैसे और क्यों) घटित हुई है। आज की पत्रकारिता में बिना स्रोत के भी समाचार लिखे जा रहे हैं। उनका चुनाव भी राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को ध्यान में रख कर किया जा रहा है। यह पत्रकारीय सिद्धांतों के खिलाफ है और पीत पत्रकारिता को बढ़ावा देता है। समाचार पत्रों ने प्रसार संख्या और टीवी की टी.आर.पी. बढ़ाने के लिए हर हथकंडे अपनाए। विभिन्न तरीकों से पत्रकारों को अपनी ओर खींचने का प्रयास किया गया और कुछ अलग कर दिखाने की नसीहत दी गई।

पीत पत्रकारिता का भयावह रूप तब देखने को मिला, जब न्यूयार्क वर्ल्ड और न्यूयार्क जर्नल ने अमेरिका और स्पेन के बीच युद्ध को हवा दी। दोनों पत्रों ने इसे प्रसार संख्या बढ़ाने और राष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रभुत्व कायम करने के अवसर के रूप में लिया। लगातार ऐसे समाचारों का प्रकाशन हुआ, जिसने युद्ध को अवश्यंभावी बना दिया। पीत पत्रकारिता की औपचारिक शुरुआत का यह दौर आने वाले समय के लिए एक खतरा बन गया। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध में भी पत्रकारिता का जमकर दुरुपयोग हुआ। जनसमूह को अपने पक्ष में करने के लिए संदेशों के साथ खिलवाड़ आम बात रही। इसके लिए पत्रकारिता के सभी साधनों पर नियंत्रण कर कई देशों को युद्ध करने पर मजबूर किया गया, जबकि कई देशों पर युद्ध थोपा गया। यह दौर आगे भी चलता रहा।

जनसंचार के नए माध्यमों रेडियो, टीवी और न्यू मीडिया के आगमन के बाद प्रतिस्पर्धा का एक नया दौर शुरू हुआ, जिसने पीत पत्रकारिता को बढ़ावा दिया। पहले सिर्फ पत्र पत्रिकाओं के बीच प्रसार संख्या और विज्ञापन को लेकर होड़ थी, लेकिन रेडियो के बाद टीवी और फिर टीवी के बाद न्यू मीडिया के आने से यह होड़ काफी बढ गई। पत्रकारिता का परिदृश्य एकदम बदल गया। बाजार में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए हर प्रकार के संचार माध्यम को काफी जद्दोजहद करनी पड़ी। सबसे तेज और सबसे अलग दिखने वाले इस माहौल में पत्रकारीय भूल आम बात हो गई, जिससे पीत पत्रकारिता को हर माध्यमों के जरिए पनपने का अवसर मिला।

भारत में 1975–77 के दौरान आपातकाल लागू हुआ, जिससे देश में राजनीतिक भूचाल आ गया। इसने पत्रकारिता को भी प्रभावित किया। सत्तासीन दल ने पत्रकारीय स्वतंत्रता को कुचलने का प्रयास किया। इसने पत्रकारिता के राजनीतिक दुरुपयोग का अहसास कराया। जिन पत्रकारों ने इस परिस्थिति में सरकार के समक्ष हथियार डाले, वे उनके कोपभाजन से बचे रहे, लेकिन जिन्होंने इसका विरोध किया, उन्हें इसका खामियाजा भुगतना पड़ा। यहां से पीत पत्रकारिता के पनपने का दौर शुरू हुआ। सरकार के समक्ष घुटने टेकने वाले पत्रकारों ने खुद को बचाने के लिए पत्रकारीय मापदंडों से खिलवाड़ किया। राजनीतिक दबाव में कैसे पत्रकारिता बिखरी, आपातकाल

इसका बेहतरीन उदाहरण रहा, हालांकि कुछ पत्रकारों ने इसका जबर्दस्त प्रतिरोध किया। 70–80 के दशक में पंजाब केसरी, मनोहर कहानियां, सत्यकथा, और नूतन कहानियां जैसी पत्र पत्रिकाओं ने लगातार ऐसे प्रयोग किए, जिन्हें पीत पत्रकारिता की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन्होंने प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए अपराध, सेक्स और मनोरंजन को विशेष तवज्जो दी। भडक़ाऊ तस्वीरों के साथ अपराध के समाचारों के प्रस्तुतीकरण ने एक खास पाठक वर्ग को बहुत आकर्षित किया। इससे इनकी प्रसार संख्या में काफी इजाफा हुआ। इस दौरान बड़े पैमाने पर होने वाली गंभीर पत्रकारिता ने पीत पत्रकारिता को हावी नहीं होने दिया। बाद में अन्य माध्यमों द्वारा ट्रिपल सी फार्मूला (क्रिकेट, क्राइम और सिनेमा) अपनाए जाने के कारण पत्रकारिता में पीत का समावेश होता चला गया।

इस दौरान की पत्रकारिता पर रॉबिन जेफ्री के अध्ययन में यह बात सामने आई कि आपातकाल के तुरंत बाद तक पत्र पत्रिकाओं के प्रसार में खासा इजाफा नहीं हुआ था। 1976 तक 80 लोगों को एक समाचार पत्र के साथ संतोष करना पड़ रहा था, लेकिन 1996 तक 20 लोगों पर एक समाचार पत्र निकलने लगा। इस क्षेत्र में चौगुना इजाफा हुआ। जेफ्री ने इसे भारत में मुद्रण क्रांति की संज्ञा दी है। छपाई की आधुनिक तकनीक के कारण समाचार पत्रों के रंग रूप में बदलाव आया। ऑफसेट प्रेस ने प्रसार संख्या बढ़ाने में बड़ा योगदान दिया। सजावट पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। स्थानीयता संपादकीय नीति का हिस्सा बन गया। इस कारण भाषायी पत्र–पत्रिकाओं का विकास हुआ, जिसने 90 के दशक तक प्रसार के मामले में अंग्रेजी पत्र पत्रिकाओं को पीछे छोड़ दिया, जिससे प्रसार संख्या और विज्ञापन को लेकर जबर्दस्त प्रतियोगिता शुरू हुई। यहां से पीत पत्रकारिता ने अपना पांव पसारना शुरू किया। इस समय तक टीवी और रेडियो एक माध्यम के रूप में स्थापित हो चुके थे, लेकिन दोनों माध्यमों पर सरकारी नियंत्रण का असर साफ झलक रहा था। 1977 में आपातकाल के बाद जब जयप्रकाश नारायण ने दिल्ली में रैली का ऐलान किया तो दूरदर्शन ने रैली को कथित तौर पर असफल दिखाने का प्रयास किया। इसके लिए दूरदर्शन ने पूरी ताकत झोंक दी। कैमरे उन्हीं जगहों पर लगाए गए थे, जहां लोग कम दिखाई दे रहे थे। रात के प्रसारण में दूरदर्शन ने इस रैली को असफल साबित कर दिया, लेकिन पत्र पत्रिकाओं ने अपने कवरेज से इसकी पोल खोल दी। जयप्रकाश नारायण को लाखों लोगों को संबोधित करते हुए दिखाया गया। इन्हीं भूमिकाओं के कारण दूरदर्शन पर सरकारी भोंपू का ठप्पा लग गया। पीसी जोशी समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में दूरदर्शन की भूमिका को सही नहीं बताया। उन्होंने कहा कि यह असली भारत का चेहरा नहीं दर्शाता। देश के विकास की तस्वीर बदलने में यह महती भूमिका निभा सकता है, हालांकि मनोरंजन के मोर्चे पर दूरदर्शन के कार्यक्रमों में साफ सुथरापन नजर आया। हमलोग, बुनियाद, रामायण और महाभारत जैसे कार्यक्रमों ने समाज को एक स्वस्थ संदेश दिया, जिसमें पीत जैसी कोई बात नहीं थी।

वैश्वीकरण का असर भी भारतीय पत्रकारिता पर साफ दिखा, जब पश्चिमी देशों में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की नकल की गई। 1995 में जीटीवी ने इंडियाज मोस्ट वांटेड नामक कार्यक्रम के जरिए अपराध जगत से जुड़ी समाचारों का प्रसारण शुरू किया। यह पूरी तरह ब्रिटेन और अमेरिकी टीवी चौनलों में प्रसारित होने वाले कार्यक्रम की नकल थी। भारतीय दर्शकों ने इसे काफी पसंद किया। इसे भांपते हुए एक के बाद एक चैनल इस तरह के कार्यक्रमों की कड़ी में जुड़ गए। सनसनी और क्राइम रिपोर्टर जैसे कार्यक्रमों ने सनसनाहट पैदा कर दिया। यह चैनलों की मजबूरी भी रही कि उन्हें 24 घंटे कुछ न कुछ प्रसारित करते रहना है। प्रसारण भी ऐसा हो, जो टीआरपी, विज्ञापन और दर्शक बनाए रखे, इसलिए उन्होंने पश्चिमी देशों के कई कार्यक्रमों की नकल करने में भी कोई गुरेज नहीं की। आज जीटीवी, एनडीटीवी, आज तक, स्टार न्यूज, सहारा, सीएनबीसी, सीएनईबी, पी सेवन, टाइम्स नाउ, इंडिया टीवी और इंडिया न्यूज सहित सैकड़ों ऐसे चैनल हैं, जो ऐसा कर रहे हैं। इस रूझान का नकारात्मक प्रभाव यह हुआ कि हर कार्यक्रम को मसालेदार और सनसनीखेज बनाने का दबाव बढ़ता गया। समाचार मूल्य पर मनोरंजन मूल्य हावी हो गया। इसके अलावा ब्रेकिंग न्यूज, सबसे तेज, सबसे पहले की हड़बड़ी में मीडिया ने कई भारी भरकम भूलों को अंजाम दिया। कई बार गैर जिम्मेदाराना और आपत्तिजनक प्रकाशन प्रसारण ने तो पत्रकारिता पर लगाम लगा ने की बहस नए सिरे से छेड़ दी।

बीसवीं सदी के अंत तक जनसंचार के सशक्त माध्यम के रूप में न्यू मीडिया का आगमन भी हुआ, जिसने आते ही अपनी धमक दिखा दी है। आज जिस न्यूज पोर्टल पर नजर डालिए, उसमें समाचार लिंक के अलावा कई ऐसे लिंक हैं, जो सेलिब्रिटी और सेक्स से जुडे हैं। कई चटपटी खबरें आसानी से मिल सकती हैं। ये लिंक भी ऐसे होते हैं, जिसमें एक के बाद एक कई समाचारों को पाठक पढ़ सकता है। वीडियो देखने की सुविधा भी उपलब्ध होती है। न्यूज वेबसाइट का एक कोना ऐसा भी होता है, जिसमें मॉडलों और सेलिब्रिटी की हजारों तस्वीरें होती हैं। इसके अलावा भी कई तरह की लिंक होती हैं, जो सूचनात्मक हैं, लेकिन जिस तरीके से एक वेबसाइट को सजाया जाता है, उससे यह साफ प्रतीत होता है कि कुछ प्रमुख समाचारों को छोडक़र ज्यादातर जोर मॉडल और सेलिब्रिटी वाले भाग पर है। टाइम्स ऑफ इंडिया और नवभारत टाइम्स इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिसका अनुसरण अन्य न्यूज पोर्टल भी कर रहे हैं।

आजकल भारतीय मीडिया में केंद्रीयकरण लगातार बढ़ता जा रहा है, जिस कारण कुछ समाचार समूहों का एकछत्र राज कायम हो गया है। वे जो प्रकाशित प्रसारित करते हैं, उन्हें ही समाचार या विचार माना जाने लगा है। कुछ चैनल्स तो आम आदमी का ब्रेन वाश करने का पूरा प्रयास कर रहे हैं, कभी–कभी सोशल मीडिया पर झूठ इतना चल जाता है कि सच भी कमजोर पढ़ जाता है। बड़े समूह के इस दांव पेच ने अन्य छोटे और मझोले समाचार समूह के लिए भारी मुसीबत खड़ी कर दी है। इस कारण ये कुछ समय बाद दम तोड़ देते हैं। किसी भी समाचार समूह के लिए प्रसार संख्या, टीआरपी और विज्ञापन सबकुछ हो गया है, लेकिन जैसे ही छोटे व मझोले समाचार समूह बड़े समूहों को चुनौती पेश करते हैं। इनसे निपटने के लिए कई हथकंडे अपनाए जाते हैं। मसलन राजनीतिक और आर्थिक दबाव से उन्हें बर्बाद करना। एकाधिपत्य का फायदा उठाते हुए उन्हें मजबूरन ऐसे समाचारों के प्रकाशन प्रसारण के लिए बाध्य करना, जिसके लोग आदी करवाए जा चुके हैं। इस प्रवृति को तोड़ना छोटे व मझोले समूहों के लिए कठिन होता जा रहा है और वे धीरे–धीरे मीडिया परिदृश्य से गायब हो रहे हैं।

पीत पत्रकारिता के उदाहरण

1999 में कारगिल युद्ध के दौरान सभी चैनलों को इस युद्ध का लाइव प्रसारण करने का मौका मिला। इन चैनलों के मालिकों को यह अवसर कुछ उसी प्रकार दिखाई दिया, जैसा कि 1990 में खाड़ी युद्ध के लाइव प्रसारण से सीएनएन इंटरनेशनल चैनल अमेरिका में स्थापित हो गया था। कुछ अलग करने की होड़ में एक भारतीय टीवी चैनल के पत्रकार ने गंभीर भूल कर दी, जिस कारण चार भारतीय जवानों को जान से हाथ धोना पड़ा। ऐसा माना गया कि टीवी पत्रकार के कैमरे की उपस्थिति से ही पाकिस्तानी सेना को इस बात का अंदाजा लगा कि एक खास बटालियन की तैनाती किस दिशा में है। इस गैर जिम्मेदाराना रिपोर्टिंग से यह दुखद घटना हुई। ऐसी कई घटनाएं हैं जो साफ दर्शाती हैं कि सारे सिद्धांतों और आचार संहिता को ताक पर रखकर काम किया गया। 2008 में मुंबई पर हुए आतंकी हमले के दौरान भी पत्रकारों ने एक के बाद एक कई गंभीर गलतियां कीं, जिसने पत्रकारिता की भूमिका पर सवाल खड़े किए और इसके नियमन के लिए कई कानूनों पर विमर्श करने पर मजबूर किया।

सन् 2001 में अचानक मीडिया में मंकी मैन छा गया। इस समाचार की जांच पड़ताल किए बिना समाचार समूहों ने लगातार इसका प्रकाशन प्रसारण किया। दिल्ली के पास स्थित गाजियाबाद के कुछ लोगों के कहने पर एक स्थानीय समाचार पत्र में यह समाचार छपा कि एक अदृश्य शक्ति ने रात को लोगों पर हमला किया, जिसे बाद में दिल्ली के अन्य समाचार पत्रों ने भी छापा। यहाँ तक कि Times of India और The Guardian में भी यह खबर छपी। कुछ ही दिनों के भीतर ऐसे समाचार पिछड़े इलाकों से आने लगे। टीवी चैनलों ने भी इस मौके को खूब भुनाया। कुछ लोगों के माध्यम से यह साबित करने का प्रयास किया गया कि मंकी मैन को देखा गया है। इससे जुड़े रोचक किस्से गढ़े जाने लगे। हर शाम एक नई कहानी का प्रसारण होने लगा, जिसमें कोई दावा करता कि मंकी मैन चांद से आया है तो कोई कहता कि मंगल ग्रह से। एक चैनल ने तो एनिमेशन के जरिए इस कथित मंकी मैन का चित्र ही बना डाला और टीवी पर बताया कि अपने स्प्रिंगनुमा पंजों से मंकी मैन एक साथ कई इमारतें फांद लेता है। इससे जुड़ी कई कहानियाँ साथ–साथ चलने लगीं। करीब एक महीने बाद यह खबर बासी हो गई, क्योंकि इसमें कोई ऐसा साक्ष्य सामने नहीं आया जिससे यह साबित हो कि कोई मंकी मैन जैसी कोई चीज है। जैसे–जैसे

लोगों की रूचि इसमें घटने लगी, मीडिया भी अन्य कहानियों को ढूढ़ने में व्यस्त हो गया। मंकीमैन अचानक हीं गुम सा हो गया। इस प्रकार समाचार पत्रों से शुरू हुए पीत पत्रकारिता को टीवी चैनलों ने भुनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। बाद में दिल्ली पुलिस की रिपोर्ट में इन सभी बातों को एक सिरे से खारिज कर दिया गया। जो जानकारी सामने आई, वह काफी रोचक थी। जानकारी के मुताबिक मंकी मैन का सारा हंगामा निचली बस्तियों में हो रहा था, जहाँ बिजली की भारी कमी रहती थी। गर्मी के दिन थे और एकाध जगह वास्तविक बंदर के हमले पर जब मीडिया को मजेदार कहानियाँ मिलने लगी तो वह भी इसे बढ़ावा देकर इसमें रसलेने लगा। लोग भी देर रात पुलिस और मीडिया की मौजूदगी की गुहार लगाने लगे। नतीजन रात भर गुल रहने वाली बिजली अब भरपूर मजे से कायम रहने लगी और गर्मी का मौसम सुकून मय हो गया। इस सुकून की तलाश में ही मंकीमैन खूब फलाफूला और कहानी की तलाश में घूम रहे पत्रकारों का लोगों ने इस्तेमाल किया।

साल 2001 में अमेरिका पर हुए आतंकी हमले के बाद पत्रकारिता की भूमिका से जुड़े दो पहलू सामने आए। पहला यह कि अमेरिका में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर हुए हमले के दौरान अमेरिकी समाचार समूहों के कवरेज में एक परिपक्वता नजर आई। इस हमले की रिपोर्टिंग के दौरान ऐसी कोई बचकाना हरकत नहीं की गई कि जिससे यह लगे कि मीडिया माहौल को और बिगाड़ रहा है या फिर राहत कार्य में किसी प्रकार की बाधा पहुंचा रहा है, लेकिन मुंबई पर हुए हमले के दौरान भारतीय समाचार समूहों ने जिस तरीके से इसका कवरेज किया, इसने हर स्तर पर एक बहस छेड़ दी।

9/11 मीडिया का दूसरा पहलू तब सामने आया जब हमले के बाद राहत से जुड़े सारे कार्य पूरे हो गए। अमेरिका ने आतंक के खिलाफ जंग का ऐलान किया और वैश्विक स्तर पर इसके लिए कूटनीतिक प्रयास तेज कर दिए। इस दौरान कई समाचार समूहों को हमले के लिए माहौल बनाने का काम सौंपा गया। ऑपरेशन एंडयोरिंग फ्रीडम के नाम से अमेरिका ने अफगानिस्तान में छिपे आतंकियों पर हमला किया। फिर ऑपरेशन इराकी फ्रीडम के नाम से इराक पर हमले हुए। कहने का साफ मतलब है कि वैश्विक स्तर पर अपने पक्ष में माहौल बनाने के लिए अमेरिका ने समाचार समूहों के जरिए हर तरह के हथकंडे अपनाए यह वैश्विक स्तर पर राजनैतिक दबाव बनाने का तरीका है। अगर विरोधी टीवी चैनलों ने अमेरिका के इस प्रयास में खलल डालने की कोशिश की तो वह उन पर हमले कराने से भी गुरेज नहीं किया। इसका बेहतरीन उदाहरण इराक युद्ध के दौरान अल जजीरा चैनल पर किया गया हमला है। असल में अफगानिस्तान हमले के समय से ही अल जजीरा चैनल ने वहां हो रही जान माल की क्षति का लाइव प्रसारण किया, जो काफी भयावह था। इस प्रसारण को उसने इराक हमले के दौरान भी जारी रखा, जिससे कई देशों में अमेरिका के खिलाफ माहौल तैयार होने लगा। अमेरिका सहित यूरोप में विरोध के स्वर तेज होने लगे। इस कारण अमेरिका ने अल जजीरा के नेटवर्क को ध्वस्त करने का प्रयास किया, ताकि ऐसा कोई कवरेज न हो, जिससे अमेरिका के अभियान में परेशानी खड़ी हो।

2003 में एक कार्टून प्रतियोगिता के माध्यम से पीत पत्रकारिता की स्थिति का पता चला। दिल्ली की एक गैर सरकारी संस्था सौवे फाउंडेशन की ओर से आयोजित कार्टून प्रतियोगिता का विषय था (व्हाट मेक्स न्यूज)। इसमें बड़ी तादाद में पत्रकारों ने हिस्सा लिया। प्रतियोगिता के दौरान सबसे ज्यादा वह कार्टून सराहा गया, जिसमें टीवी का एक पत्रकार बलात्कार की शिकार एक युवती के सामने कैमरामैन से कहता है कि काश ! इस घटना के कुछ विजुअल मिल जाते। यह कार्टून मौजूदा समय की पीत पत्रकारिता की वास्तविकता बताता है।

2004 में गुडिया प्रकरण भी सामने आया। जब कई टीवी चैनलों में इस बात की होड़ लग गई कि गुडिया किसकी पत्नी होगी। बेहद निजी मामले को ऐसे प्रकाशित प्रसारित किया गया। असल में हुआ यूं कि पाकिस्तान की जेल से दो कैदी रिहा हुए। इनमें से एक आरिफ जब अपने गांव पहुंचा तो उसने देखा कि उसकी पत्नी गुडिया की शादी हो चुकी है और वह 8 महीने की गर्भवती है। वापसी पर आरिफ का कथित तौर पर मानना था कि गुडिया को अब भी उसके साथ रहना चाहिए, क्योंकि शरीयत के मुताबिक वह अब भी उसकी पत्नी है। जी न्यूज ने फैसला सुनाने के लिए लाइव पंचायत ही लगा दी। कई घंटे तक चली पंचायत के बाद यह फैसला किया गया कि वह आरिफ के साथ रहेगी। इसका दूसरा पहलू और भी दुखद था। पत्रकारों ने गुड़िया, आरिफ और उसके रिश्तेदारों

को अपने गेस्ट हाउस में काफी देर तक रखा, ताकि कोई और चैनल गुडिया़ के परिवार की तस्वीर न ले पाए। इसके लिए खींचतान जारी रही। इस मुद्दे को मसालेदार बनाकर पेश किया गया।

2005 में भारतीय टीम के तत्कालीन कप्तान सौरव गांगुली और कोच ग्रेग चौपल के बीच विवाद शुरू हुआ। यह विवाद इतना बढ़ा कि देशभर में एक बड़ी खबर बन गया। हर तरफ चौपल के पुतले जलाए जाने लगे। यह कोई नई बात नहीं है कि एक टीम में कुछ मुद्दो को लेकर कोच और कप्तान के बीच मतभेद होते हैं। शुरुआती दौर में यह सामान्य मतभेद की तरह ही सामने आए, जिसे विचार विमर्श के जरिए सुलझाया जा सकता था, लेकिन समाचार समूहों ने इसे ऐसी हवा दी कि यह भारत बनाम आस्ट्रेलिया बन गया। हर समाचार पत्र और टीवी चैनलों के पत्रकार ने इससे जुड़ी हर बातों का प्रकाशन प्रसारण किया। उल्लेखनीय है कि भारत में क्रिकेट किसी अन्य मुद्दों से ज्यादा महत्व रखता है। ऐसे में लोगों का इसमें विशेष रुचि रखना सामान्य बात है। इस स्थिति को भांपते हुए समाचार समूहों ने विभिन्न तरीकों से लीक हुई सूचनाओं को गांगुली बनाम चौपल करके प्रस्तुत करना शुरू कर दिया, जिससे देश में चौपल विरोधी लहर चल पड़ी। चौपल की भी कुछ हरकतों ने पत्रकारों को मुद्दे को उछालने का भरपूर मौका दिया। समाचार समूहों के लगातार कवरेज से ऐसा माहौल बन गया कि उन्हें इस्तीफा देकर जाना पड़ा।

2007 में समाचार समूहों के कवरेज ने ऐश्वर्या राय और अभिषेक बच्चन की शादी को राष्ट्रीय शादी घोषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इस कारण यह घटना तथाकथित रूप से उस दौरान देश की सबसे बड़ी घटनाओं में शामिल हो गया। इसके कवरेज के लिए समाचार पत्रों से लेकर टीवी चौनलों के पत्रकारों की एक टीम बनाई गई, जिन्होंने इस शादी से जुड़े हर पहलुओं का कवरेज किया। शादी में ऐश्वर्य और अभिषेक क्या पहनेंगे? उनके पोषाक कहां से मंगाए गए हैं? कौन कौन से मेहमान आने वाले हैं और उनके भोजन के क्या इंतजाम हैं? इसके लिए अमिताभ बच्चन के घर के सामने पत्रकारों ने जमावड़ा लगा दिया। इसके अलावा पंडितों की एक टीम बुलाकर मांगलिक जैसे मुद्दों पर घंटों विचार विमर्श कराया गया। पंडितों ने विभिन्न तर्क दिए, जिसमें कुछ ने कहा यह शादी सफल होगी तो कुछ ने असफल होने के संकेत दिए। ऐसा माहौल तैयार किया गया मानो यह कोई राष्ट्रीय शादी है।

2008 में एक और दुखद घटना तब हुई, जब आतंकवादियों ने मुंबई पर हमला कर दिया। करीब तीन दिनों तक ऐसा प्रतीत हुआ कि आतंकियों के खिलाफ कमांडो कार्रवाई के साथ साथ सभी टीवी चैनल भी एक मिशन पर हैं। खासकर कमांडो कार्रवाई के दृश्य और हड़बड़ी में लोगों तक पहुँचाए गए संदेशों ने कई सवाल खड़े किए। आतंकी हमले के दौरान कई बार इस तरह के दृश्य देखने को मिले, जिसमें सेना के जवानों को अहम स्थानों पर मोर्चा संभालते दिखाया गया। एटीएस प्रमुख हेमंत करकरे, एसीपी अशोक आम्टे और विजय सालस्कर को तैयार होते दिखाया गया, जो कवरेज का हिस्सा नहीं होना चाहिए था, क्योंकि यहां कई लोगों की जिंदगियां दांव पर थीं। इस दौरान आतंकी भी अपनी साजिश अंजाम देने के लिए पाकिस्तान स्थित अपने आकाओं के संपर्क में थे। ऐसे में बार–बार इन दृश्यों को दिखाने से सवाल उठना लाजिमी था। इस हमले में एटीएस प्रमुख सहित तीन आला अधिकारी शहीद हो गए और आतंकियों से मुठभेड़ भी करीब तीन दिनों तक चलती रही। टीवी चैनलों के इस तरह के कवरेज को न तो नैतिक रूप से सही ठहराया जा सकता है और न ही सुरक्षा के दृष्टिकोण से। यही कारण है कि मुंबई आतंकी हमले के बाद सरकार और न्यायालय को हस्तक्षेप कर कहना पड़ा कि ऐसे दृश्य न दिखाएं, जिससे सेना की कार्यवाही को फायदा होने के बजाए नुकसान हो और जन समूह में गलत संदेश जाए।

संकट की घड़ी में समाचार समूहों पर दोहरी जिम्मेदारी होनी चाहिए। पहला सतर्कता के साथ कवरेज करना और दूसरा उसका सही तरीके से प्रस्तुतीकरण करना, लेकिन सबसे तेज बनने के चक्कर में टीवी चैनलों की संवेदनहीनता और गैर जिम्मेदाराना रवैया साफ नजर आया। यह संकट का समय था और खबरों को भुनाने के बजाए उसे परिपक्वता के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। इस दौरान ज्यादातर समाचार समूह पूर्वाग्रह से ग्रसित तब नजर आया, जब सभी ने होटल ताज और ओबेराय के बाहर जमावड़ा लगा दिया। इस दौरान छत्रपति

शिवाजी टर्मिनल की सुध किसी ने नहीं ली, जहां 47 लोग मारे गए थे। यह कवरेज असंतुलित नहीं तो और क्या था। इससे साफ लगता है कि चैनलों की नजर में होटल ताज और ओबेराय में गए विदेशी और उच्च वर्ग के लोगों के जान की कीमत ज्यादा थी, जबकि छत्रपति शिवाजी टर्मिनल में मारे गए लोगों की कम। हद तो तब हो गई, जब होटल से छुड़ाए बंधकों के पीछे पत्रकार कैमरे और माइक लेकर दौडने़ लगे। भय के इस माहौल में उन्हें तंग करना कितना सही था। ऐसे में स्वाभाविक है कि टीवी चैनलों के कवरेज पर सवाल खड़े होंगे।

आरुषि हत्याकांड के रूप में एक और दुखद घटना घटित हुई। ऐसी ऐसी कहानियां गढ़ी गई, जिसने पुलिस और सीबीआई को भी दिग्भ्रमित किया। चूंकि यह उस समय की एक बड़ी घटना थी, जिसे लोग जानना चाहते थे। इस बात को भांपते हुए टीवी चैनलों ने हर बार एक नए आयाम के साथ आरुषि से जुड़ी हर बातों का घंटों प्रसारण किया। समाचार पत्र भी इस मामले में पीछे नहीं रहे। कभी आरुषि, कभी हेमराज तो कभी तलवार दंपति। इन सभी से जुड़ी कहानियों के कारण देश भर में अन्य सभी मुद्दे गायब हो गए।

2010 में हरियाणा के उप मुख्यमंत्री चंद्रमोहन और अनुराधा बाली के प्रेम संबंधों को भी समाचार समूहों ने राष्ट्रीय प्रेम घोषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। असल में एक बड़े राजनीतिक घराने के पारिवारिक झमेले को समाचार समूहों ने बड़े चटकारे के साथ पेश किया। चंद्रमोहन और अनुराधा बाली ने भी इनका जमकर इस्तेमाल किया। जब भी इस मामले से जुड़ी कोई नई बात सामने आती, दोनों पत्रकारों को बुलाकर इसे सार्वजनिक करने लगते। समाचार समूह भी इसे एक चटपटे समाचार के रूप में पेश करते रहे। इस दौरान हरियाणा में ऑनर किलिंग से जुड़ी कई घटनाएं लगातार होती रहीं, लेकिन इस ओर उतना ध्यान नहीं गया, जितना कि इस राजनीतिक घराने पर रहा। ऑनर किलिंग संबंधी एक समाचार छापने के बाद समाचार समूह चुप हो जाते, लेकिन चंद्रमोहन से चांद मोहम्मद ओर अनुराधा बाली से फिजा बनने वाली इस घटना को पत्रकारों ने राष्ट्रीय सुर्खियों में ला दिया। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि एक कलाकार सुर्खियों में आने के लिए समाचार समूहों का इस्तेमाल करते हैं। राखी सावंत इसका बेहतरीन उदाहरण है। बेबाक बोलने वाली इस कलाकार की हर बात को पत्रकार प्रस्तुत करने में कोई गुरेज नहीं करते हैं। इसने एक नई संस्कृति को जन्म दिया है। यदि सुर्खियों में आना है तो कुछ ऐसा कर दो, जो एकदम अलग हट कर हो।

2011 में कुछ ऐसा ही वाकया सामने आया, जो अब तक पश्चिमी देशों में होता रहा है। एक नवोदित मॉडल ने यह कहा कि यदि भारतीय क्रिकेट टीम विश्व कप जीतती है तो वह नग्न हो जाएंगी। समाचार समूहों को तो जैसे मनचाहा समाचार मिल गया। यह तुरंत हर न्यूज पोर्टल, टीवी चौनलों और समाचार पत्रों में आ गया। विश्व कप में हार जीत के फैसले पर कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसे में शायद मॉडल ने भी यह नहीं सोचा होगा कि भारतीय क्रिकेट टीम ही विश्व कप जीतेगी। सस्ती लोकप्रियता बटोरने के लिए उसने यह कह दिया। समाचार समूहों को भी ऐसे मौके का इंतजार था, इस बयान को हर स्तर पर प्रकाशित प्रसारित किया गया, लेकिन भारतीय टीम के जीतने पर मॉडल गुम सी हो गई । खराब स्वास्थ्य का हवाला देकर उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। इसमें एक बात तो खुलकर सामने आयी कि पत्रकारिता का किस हद तक इस्तेमाल हो रहा है।

समाचार समूह अपने कवरेज के दौरान अपराधियों को बाहुबली और दबंग के रूप में पेश करते रहे हैं। ऐसे शब्दों के प्रचलन से यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि वास्तव में हत्या, बलात्कार, लूट और भ्रष्टाचार की घटनाओं को अंजाम देने के बाद कोई बाहुबली और दबंग कैसे हो सकता है? इन शब्दों का यह सकारात्मक उपयोग है या फिर नकारात्मक, यह तय करना मुश्किल हो जाता है। ये दबंग आगे चल कर राजनीतिज्ञ बन जाते हैं। यह समाचार समूहों की ही देन है कि दाउद इब्राहिम और वीरप्पन सहित कई अपराधी समाज में मॉडल की तरह नजर आते हैं।

कई समाचार समूहों के एक अनोखे प्रयोग ने पीत पत्रकारिता के चरम का बोध कराया है। उनका मानना है कि यदि किसी अपराध का भंडाफोड़ करना है तो अपराधियों के ही तरीकों को अपनाकर समाचार प्रकाशित प्रसारित करने में कोई गुरेज नहीं करना चाहिए। इसने एक खतरनाक प्रवृति को जन्म दिया है। खासकर ऐसे खबरों के

प्रकाशन प्रसारण के लिए स्टिंग ऑपरेशन का सहारा लिया जाता है, लेकिन कई बार यह पत्रकारों के लिए जी का जंजाल बन जाता है, जब वह खुद अपराधी की तरह कटघरे में खड़े हो जाते हैं। तहलका पत्रिका की रिपोर्टिंग के तरीके कुछ ऐसे ही रहे हैं, जिसे बाद में कुछ अन्य टीवी चौनलों ने भी अपनाने का प्रयास किया। यह इतनी खतरनाक प्रवृति है, जिसमें एक पत्रकार अपराधी की भूमिका में नजर आता है।

यह हमेशा से होता रहा है कि चुनाव जीतने के लिए कोई दल किसी भी हद तक जाने को तैयार रहते हैं। इसके लिए वे पानी की तरह पैसा बहाते हैं। उन्हें यह भी पता है कि सबसे पहले समाचार समूहों को प्रभावित करना जरूरी है, क्योंकि इनकी पहुंच एक विशाल जनसमूह तक होती है। इस कारण पिछले कुछ वर्षों के दौरान हुए चुनावों में एक नए तरह की पत्रकारीय विचलन का पता चला है, जो पेड न्यूज के रूप में सामने आया है। इसमें कोई दल चुनाव के दौरान अपने पक्ष में समाचार प्रकाशित करने के लिए करोड़ों रुपए एक समाचार समूह को देते हैं, जिसके बाद वह समाचार समूह पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर दल विशेष के पक्ष में समाचार पेश करता रहता है। इस दौरान एक पत्रकार को वो हर सुविधाएं देने का वादा किया जाता है, जिसकी वह कल्पना नहीं कर सकता। हर चुनाव के दौरान ऐसा लुक छिपकर किया जा रहा है। इसके साथ साथ एडवर्टोरियल का चलन बढ़ा है, जिसका मतलब एक विज्ञापन को समाचार के रूप में प्रकाशित करना है। यह एक ऐसा तरीका है, जिसमें पाठकों के लिए यह समझना मुश्किल हो जाता है कि यह समाचार है या विज्ञापन। इसका मुख्य उद्देश्य पाठकों को भ्रम में रखकर उत्पाद की बिक्री बढ़ाना या फिर अपने संदेश से उन्हें जबरन अवगत कराना है। हालांकि इसे रोकने के लिए प्रयास हो रहे हैं, लेकिन फिलहाल ये अपर्याप्त हैं। ऐसे में पत्रकारिता में पीत का स्तर किस हद तक पहुंच चुका है, इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है।

भारत जैसे विकासशील देश में समाचार समूहों के लिए विकास सबसे बड़ा मुद्दा होना चाहिए। इसके साथ ही उसका सही और संतुलित प्रस्तुतीकरण भी बहुत जरूरी है, लेकिन ऐसा हो नहीं रहा है। कभी कभार इससे जुड़ी कोई खबर प्रकाशित प्रसारित हो जाए तो यह काफी है। ऐसी कई घटनाएं लगातार होती रहती हैं, लेकिन समाचार समूह इसे कभी कभार प्रकाशित प्रसारित कर हल्का बना देता है। जिस ट्रिपल सी (क्रिकेट, क्राइम और सिनेमा) को आधार मानकर समाचार समूह संदेशों का प्रकाशन प्रसारण कर रहा है, उसमें विकासात्मक समाचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। आज के समाचार पत्रों और टीवी चैनलों पर नजर डालें तो यह साफ नजर आता है कि समाचार वही है, जो प्रबंधन की नजर में प्रसार संख्या और टीआरपी बढ़ाएं, जिससे विज्ञापन स्थायी रूप से बना रहे।

समाचार समूहों का नकारात्मक पहलू यह भी है कि कई बार वे ऐसी घटनाओं का प्रकाशन प्रसारण लगातार करते हैं, जो वास्तविक मुद्दे जैसे लगते हैं, लेकिन ऐसा होता नहीं है। जाने–माने पत्रकार पी साईनाथ के मुताबिक 1996 से लेकर 1999 तक टीवी चैनलों ने मोटापा घटाने संबंधी इतनी खबरें प्रचारित और प्रसारित कीं और विज्ञापन दिखाए कि उसमें यह तथ्य पूरी तरह छिप गया कि तब 10 करोड़ भारतीयों को हर रोज 74 ग्राम से भी कम खाना मिल पा रहा था।

टीवी चैनलों के आगमन के बाद पत्रकारों की गैर जिम्मेदाराना गतिविधियों में लगातार इजाफा हुआ। आचार संहिता होने के बावजूद उसकी अवहेलना की गई। खासकर मुंबई पर हुए आतंकी हमले के बाद नियामक संस्थाओं के गठन पर गंभीरता से विमर्श शुरू हो गया। ऐसे किसी भी पहल का सभी समाचार समूह यह कहकर पुरजोर विरोध करते रहे हैं कि यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हमला है। हजारों की संख्या में मौजूद इन समाचार समूहों के विरोध को सरकार नजरअंदाज नहीं कर सकती, इसलिए वह भी फूंक–फूंक कर कदम रख रही है। कई ऐसे कानून पर गंभीरता से चर्चा हो रही है लेकिन जब तक ये कानून अस्तित्व में नहीं आ जाते, तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता।

चंदा समिति, नैयर समिति, वर्गीज समिति, जोशी समिति और प्रधान समिति ने भी पत्रकारिता के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए, जिसमें कुछ पर अमल भी किया गया, लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुझाव पत्रकारों के प्रशिक्षण की लगातार अनदेखी होती रही है। पत्रकारिता के दौरान कई बार पत्रकारों विशेषकर नवोदित को यह समझ नहीं

रहता कि वे क्या कर रहे हैं? उनकी इस गैर जिम्मेदाराना कार्य से पीत पत्रकारिता को किस स्तर तक बढ़ावा मिलेगा और समाज को इससे कितना नुकसान होगा? मीडिया की हड़बड़ाहट ने इस स्थिति को और विकट बना दिया है। एक के बाद एक भूल हो रही है। ऐसे में यदि समय–समय पर प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जाए तो इससे सर्वाधिक फायदा पत्रकारिता को ही होगा। पत्रकारों को उनकी जिम्मेदारियों को अहसास कराने से स्वनियमन को बढ़ावा मिलेगा, जिससे धीरे–धीरे पीत पत्रकारिता समाप्त हो सकती है । पत्रकार किसी भी राजनीतिक और आर्थिक दबाव से मुक्त होकर काम करेंगे। स्वनियमित होने से किसी भी स्तर पर ऐसा कोई कानून बनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, जिस पर अभी लगातार बहस हो रही है। इस दिशा में प्रयास करते हुए कई समाचार समूहों ने मिलकर न्यूज ब्रॉडकास्टिंग एसोसिएशन (एनबीए) का गठन किया है, जिसका मुख्य कार्य टीवी चैनलों में होने वाले किसी भी गैर जिम्मेदाराना गतिविधियों पर नजर रखना है। यह एक सराहनीय प्रयास है, लेकिन इस प्रयास के प्रभाव के बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इससे पहले भी नियामक संस्थाओं के गठन के बाद गलती होती रही हैं और अब भी हो रही हैं। इसका सीधा समाधान है स्वनियमन। यदि इस मोर्चे पर समाचार समूह और पत्रकार खरे नहीं उतरते तो नियामक संस्थाओं का गठन करना अवश्यंभावी हो जाता है और इस के जरिए पत्रकारीय सिद्धांतों और आचार संहिताओं का सख्ती से अनुपालन कराना ही अंतिम विकल्प रह जाता है।

प्रोपेगेण्डा चाहे लोकतंत्र का हो या अधिनायकवादी व्यवस्था का, उस का मूल मंत्र होता है जनता को अपेक्षित दिशा में प्रेरित करना अथवा जनमानस के विचार को अपने अनुकूल करना। प्रेरणा तभी सफल होती है जब लोग यह विश्वास कर लें कि उन्हें वही कुछ करने के लिए कहा जा रहा है जो उनके मन की पुकार है। यह भी हो सकता है कि उन्हें ठीक–ठीक यह भी न पता हो कि वे क्या चाहते हैं। लेकिन जब पब्लिसिटी उनके सामने एक संदेश लेकर जाती है तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि उनका मन उसकी गवाही देने लगता है। जनता के साथ इस प्रकार का मानसिक तालमेल स्थापित करने के लिए मनोविज्ञान के व्यवसायिक अनुभव की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। लोक सम्पर्ककर्ता यदि थोड़ी सी साधारण समझबूझ से काम ले और ईमानदारी के साथ लोगों की भावनाओं को समझने की कोशिश करे और परिश्रम से मुंह न मोड़े, तो सफलता दूर नहीं। प्रोपेगेण्डा में सफलता का पहला सोपान यह है कि वक्ता अपने श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें ताकि वे उसकी बात सुनें। सार्वजनिक सभाओं में, जहां विरोधी भी मौजूद हों, अपना पक्ष प्रस्तुत करने में संकोच नहीं होना चाहिए, क्योंकि अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए ऐसे मौके बड़े उपयोगी होते हैं।

प्रोपेगेण्डा में भी एक युद्ध की तरह चालें चली जाती है जो भी किया जाए, शत्रु या विरोधी के लिए इतना अप्रत्याशित हो कि वह हैरानी या परेशानी में निष्क्रिय हो जाए। प्रोपेगेण्डा में दो अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का लाभ उठाया जाता है। एक है संयुक्तिकरण का जिसे अंग्रेजी में rationalization कहते है इसका मतलब है कि हम बहुत से फैसले तो अपने मन में छिपे हुए झुकावों के कारण पहले कर लेते हैं और फिर प्रकट करते समय या उनको कार्य रूप देते हुए उनके समर्थन में युक्तियां तलाश कर लेते है। शादी–ब्याह से लेकर चुनावों में मत देने तक के फैसले अक्सर हम अपने मन की गहराइयों से निकली प्रेरणाओं से प्रभावित होकर पहले कर लेते हैं। इसके बाद अपने फैसलों को सिद्धान्तों, आदर्शो और नैतिक मूल्यों या सांस्कृतिक अभिरूचियों के आधार पर युक्तियुक्त सिद्ध करते हैं। प्रोपेगेण्डा में सफलता उसी को मिलती है जो जनता के अवचेतन मन की छिपी प्रेरणाओं का लाभ उठा सके।

निष्कर्ष

साहित्य, कला, संस्कृति से लेकर राजनीति तक सभी क्षेत्रों में खोखलेपन ने कब्जा जमा लिया है। अब सारी गतिविधियां उपयोगितावाद के सिद्धांतों के मद्देनजर तय की जा रही हैं। ये सारी गतिविधियां खंड–खंड हैं, बिखरी हैं। इसमें आलोचना और अनुसंधान का अभाव है। बुर्जुआजी बार–बार नई चीजों के आस्वाद में निवेश कर रहा है। नई से नई चीजों को आस्वाद लेने की प्रवृत्ति बेहद खतरनाक है।

संदर्भ सूची

1. जेफ्री आर, *भारत की समाचार पत्र क्रांति,* भारतीय जनसंचार संस्थान, दिल्ली
2. https://timesofindia.indiatimes.com/indians-attacked-by-monkey-man/articleshow/334569671.cms
3. https://www.theguardian.com/world/2001/may/18/lukeharding
4. https://www.hindustantimes.com/entertainment/poonam-pandey-tweets-another-risque-video/story- kFjKLkJajop9aQK6O0cyjO.html
5. लोकमत या जनमत निर्माण की विशेषताएं एवं सिद्धांत, https://www.scotbuzz.org/2017/05/lokamat-ya-janamat-nirman.html 10.5.2017

****